

छायावाद : प्रवृत्तियां और विशेषताएं

संवत् 1900 से आरंभ होने वाले आधुनिक काल का तीसरा चरण छायावाद के नाम से याद किया जाता है। इसे अंग्रेजी काव्य में चलने वाले स्वच्छंदतावाद का परिष्कृत स्वरूप माना गया है। उस युग में विद्यमान अनेक प्रकार के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक बंधनों के प्रति युवकों के मन में उत्पन्न असंतोष के भाव ने हिंदी में इस काव्यधारा को जन्म दिया। ऐसा प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। इससे पहले वाले युग में कविता में सुधार और उपदेश का भाव मुख्य रहने के कारण कविता रूखी-सूखी बनकर रह गई थी। उससे छुटकारा पाने के लिए कवि प्रकृति के सुंदर रूपों का चित्रण करने लगे। मुख्य रूप से इस प्रकृति-प्रधान कविता को ही आगे चलकर छायावादी कविता कहा जाने लगा। कवि लोग अपने सभी प्रकार के भाव और विचार प्रकृति पर आरोपित करके चित्रित करने लगे। फिर चाहे वे भाव और विचार व्यक्तिवादी थे या राजनीतिक, राष्ट्रीय और सामाजिक किसी भी प्रकार के क्यों नहीं थे। सभी का वर्णन और अभिव्यक्ति इसी प्रकार से होने लगी। सो काव्य की यह धारा पूरे वेग और उत्साह से चल निकली।

छायावाद पहले युद्ध की समाप्ति के बाद आरंभ हुआ और लगभग दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति तक इसका प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता रहा। यों उसके बाद भी श्रीमती महादेवी वर्मा जैसी सशक्त कवयित्री इसी धारा को अपनाए रहीं। पर अन्य कवि धीरे-धीरे इस राह से हटते गए। इस धारा के मूल में तरह-तरह की निराशाएं विद्यमान थीं, आज भी आलोचक यह तथ्य मुक्तभाव से स्वीकार करते हैं। आचार्यों ने फिर भी छायावाद की परिभाषा कई तरह से करने का प्रयास किया है। उनमें से आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यता समन्वयवादी हाने के कारण हमारे विचार में सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। ये छायावाद को कवियों की व्यक्तिवादी चेतना में रंगी कविता तो मानते ही हैं, शास्त्रीय पद्धतियों-परंपराओं को अस्वीकार और बदलते मूल्यों की स्वीकृति भी मानते हैं। नवीनता के प्रति उत्साह तो इस काव्यधारा में आरंभ से अंत तक विद्यमान है। इसमें सौंदर्यबोध और चित्रण का महत्व भी प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। हमारी विचार में इस धारा की कविता में आध्यात्मिक चेतना और सूक्ष्म सौंदर्य-बोध का भाव एवं स्पष्ट प्रभाव भी विद्यमान है। इस प्रकार सौंदर्य-बोध और प्रकृति-साधना को ही छायावाद की आधारभूत चेतना कहा जा सकता है। 'हिंदी-साहित्य का विवचनात्मक इतिहास' के लेखक डॉ. तिलकराज शर्मा के अनुसार 'छायावाद एक ऐसी काव्य-विधा है, जिसने प्रकृति को माध्यम बनाकर मानव-जीवन के समस्त सूक्ष्म भावों, सौंदर्य-बोध एवं चेतना-गत विद्रोह को स्वरूप, आकार एवं स्वर प्रदान किया है। यहां राष्ट्रीयता का उन्मेष

भी है और संस्कृति का स्तर-स्पंदन भी है। प्रेम की अनवरत भूख भी है और आध्यात्मिकता का सरल स्फुरण थी। परंपराओं के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश भी है, नव्यता का मुखर आह्वान भी। यह सब वहां कौए के कर्कश स्वरों में नहीं बल्कि कोयल की कल-कूजन-लय में मुखर हुआ है। इसका समूचा पर्यावरण बादाम या नारियल जैसा नहीं, न ही बद्रीफल (बेर) जैसा है। बल्कि अंगूर जैसा है। जो बाहर-भीतर से सम, इसे छलकता हुआ प्रकृति की एक अमूल्य सुंदर देन माना जाता है।'

छायावादी काव्यधारा में कवियों की व्यक्तिगत चेतनाओं को सामूहिकता का प्रतिनिधित्व प्रदान करके चितारा गया है। कवियों ने आत्म-साक्षात्कार को विशेष महत्व दिया है। कवियों ने नारी-पुरुष के संबंधों पर भी नए सिरे से अपने विचार प्रकट किए हैं। दोनों की समानता और स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण बताया है। व्यक्ति-स्वतंत्रता की इच्छा और समर्थन भी इस धारा की कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है। समकालीन युग के कष्टों, संत्रासों और भौतिक पीड़ाओं से हर स्तर पर मुक्ति पाना इनका मुख्य मूल्य एवं लक्ष्य प्रतीत होता है। वह भी आत्मिक शांति के लिए के जो भौतिक जगत का जड़ता में उपलब्ध नहीं हो पाती। उस शांति-साधना का स्थल इन्हें प्रकृति के सुंदर, शांति और एकांत वातावरण में दिखाई दिया। आरंभ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे छायावाद को मात्र एक शैली मानकर इसके प्रति अपना असंतोष भाव प्रकट करते रहे। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें भी इसका सर्वांगीण महत्व स्वीकार करके कहना पड़ा। छायावादी शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्यशैली का अच्छा विकास हुआ है। इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, कोमल पद-विन्याद आदि का स्वरूप संगठित करने वाली सामग्री दिखाई देती है। इन पंक्तियों में आचार्य शुक्ल ने 'प्रत्यक्षीकरण' कहा है, वह हमारे विचार में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति ही है, जिसे छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति एवं विशेषता दोनों स्वीकार किया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि छायावादी कवि ने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम सुंदर शाश्वत प्रकृति को बनाया। सो प्रकृति के माध्यम से विचाराभिव्यक्ति को ही इस धारा की सर्वप्रमुख विशेषता माना जाता है। सभी प्रकार की सजह मानवीय भावनाओं का चित्रण इसकी दूसरी प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। इसी तरह रहस्यमयता, सभी की स्वतंत्रता का समर्थन, स्वरमयता या गेयता आदि भी छायावादी काव्य की अनन्य प्रमुख विशेषताएं मानी गई हैं। भावों का मूर्तिकरण और गत्यात्कता, नए-नए प्रतीकों और बिंबों का संपूर्ण विधान जैसी बातें भी छायावाद की प्रमुख विशेषताएं स्वीकारी गई हैं। हर कवि ने 'अहं' का उन्मेष और उत्सर्ग किया, यह बात भाषा-शैली-शिल्प के स्तर पर भी कही एवं अवरेखी जा सकती है। दूसरे शब्दों में इस धारा की कविता उत्तम पुरुषा और विषयी-प्रधान शैली, शिल्प में रची गई। सबकी पीड़ा को अपनी पीड़ा बनाकर चितारा

गया। प्रकृति को इन कवियों ने मुख्यतया दो रूपों में देखा और चित्रित किया। एक तो शिशु के भोलेपन में और दूसरे युवती नारी की अल्हड़ता-मुग्धता में। नारी को स्वतंत्र करने का उदघोष भी किया। सभी प्राणियों की मुक्ति के पक्षपाती होने के कारण छायावादी कवि इसी प्रकार के विचार निरंतर प्रकट करते रहे।

ऐसा माना जाता है कि छायावाद का आरंभ जिस पलायनवादी भावना से हुआ था, अंत में भी कुछ वैसा ही संयोग बन गया। बौद्धिकता और गहरी दार्शनिकता ने इस कविता को काफी कठिन बनाकर आम आदमी की पहुंच से परे कर दिया है। सौंदर्यबोध भी आम व्यक्ति को प्रभावित कर पाने में समर्थ नहीं रहा। कहीं-कहीं कृत्रिमता भी आ गई। इन प्रमुख कमियों के कारण छायावाद जनता का विषय नहीं बन पाया। विशुद्ध भाव-सृष्टि और सौंदर्य के वैविध्यपूर्ण चित्रण के कारण छायावाद का ऐतिहासिक महत्व तो निर्विवाद सिद्ध है। इसके विकास के आयाम भी विभिन्न एवं विविध कहे-माने जाते हैं। कविवर जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक और कविवर सुमित्रानंदन पंत को प्रतिनिधि कवि माना जाता है। पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और श्रीमती महादेवी वर्मा इस धारा के दो अन्य प्रमुख आधारस्तंभ हैं। जो हो, हिंदी-साहित्य के इतिहास में इस धारा का स्थान और महत्व चिरस्थायी है। 'सुंदर' का आधान करने वाली विशुद्ध कविता ही इसे कहा जा सकता है।